द्वितीय सर्ग।

❀ श्री अभिनन्दन स्वामी का चरित्र ❀

गुणरूपी वृक्ष की समृद्धि को बढाने वाले और जगत् को आनंद देनेवाले संवर राजा के पुत्र श्री अभिनन्दन स्वामी को मैं नमस्कार करता हूं. भव्य जनों की मोह निंद्रा को नाश करने में प्रातःकाल रूप और तत्त्वज्ञान रूप अमृत के कुंभ रूप वह प्रभु का उज्वल चरित्र अत्र कहता हूं.

इस जंबूद्वीप के पूर्व विदेह में मगल्मीक कार्यों का उत्पत्ति स्थान तुल्य मंगलावती नामकी एक सुन्दर विजय है. उसमें समुद्र की तरह सर्व रत्न की खान और पृथ्वी के मस्तक पर रत्न रूप रत्न संचया नाम की सर्व नगरियों में रत्न समान नगरी है. उसमें लक्ष्मी से कुवेर जैसा और बल से जैसे दूसरा महाबल होवे ऐसा महाबल नाम का राजा राज्य करता है. गंगा, सिंधु और रोहिताशा नामकी तीन नदियों से हिमाचल शोभायमान होता है ऐसे उत्साह, मंत्र और प्रभुता तीन शक्तियों से वो शोभायमान है चार दांतों से युवान गजेन्द्र की तरह शत्रुवर्ग को जीतने वाला शाम, दाम, दंड, भेद यह चार उपायों

से वह प्रकाश देरहा था, बुद्धि का निधि वो राजा अर्हन् को देव, साधु को गुरु, और जिन भाषित धर्म को ही धर्म हमेशा मानता था. दान, शील, तप और भाव यह चार प्रकार के धर्म में वो हमेशा खेलता था, क्योंकि महापुरुष का पुण्य नया पुण्य के पवित्र कार्यों को ही ग्रहण करता है.

ऐसा यह विवेकी महाराजा सब स्थान पर अनित्यता जान और संसार से उद्वेग पाये हुवे केवल (परिमित उपरान्त) आश्रव का त्याग करे ऐसा श्रावक धर्म के आराधन से संतुष्ट नही हुवा इससे इंद्रियों को दमन करने वालों में श्रेष्ठ ऐसा उसने विमलसूरि के चरण में आके सर्व विरतिपणा अंगीकार किया. साधुपणे से विचरता हुवा वो राजा दुर्जनों की निंदा से दिल मे खुश होता था, और सज्जनो की की हुई पूजा से लजाता था. पापी लोग उसको क्लेश कराते तो भी वो बिलकुल उद्वेग नही पाता, और बड़े लोक पूजा करते तो भी बिलकुल घमण्ड नहीं करता, रमणीय उद्यान आदि मे विहार करते भी उनमें उसको राग नही होता और सिंह व्याघ्र वगैरे से भयंकर अरण्यो में विहार करने से उसको विराग नहीं होता हेमंत ऋतु में (पाला) हिम गिरने से कठिन रात्रि में हाथी के आलान स्तंभ की तरह निश्चल बन कायोत्सर्ग करके निर्गमन करता था. सूर्य की गर्मी से भयंकर ग्रीष्म ऋतु मे धूप में खड़े हो

के काउसग्ग करने पर भी अग्नि से पवित्र किये हुवे वस्त्र की तरह चमकता था. वर्षाऋतु में हाथी की तरह ध्यान से दो नेत्र को स्थिर कर वृक्ष के नीचे काउसग्ग करके रहता था जैसे ऋण रहित पुरुष व्यापार में धन एकट्ठा करे ऐसे एकावली और रत्नावली वगैरे अनेक प्रकार के तप करके तप संपत्ति मिलाई थी उन्होंने वीस स्थानको में के कितनेक स्थानकों के आराधन से आखीर में तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया और दीर्घकाल पर्यंत व्रत पालकर अनशन लेकर मृत्यु पाके विजय विमान में महर्द्धिक देवता हुआ.

इस जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र के अन्दर इन्द्र की नगरी जैसी अयोध्या नामे पुरी है. उस नगरी में घर घर मे रहते हुए मणिमय स्तम्भों में प्रतिबिंबित बना हुआ चन्द्रमा स्थावर पदार्थ को भी शृंगार रूप दर्पण की शोभा देता है. वहां हरेक घरके चौक मे वृक्षों पर क्रीडा की मयूरियोंने खींच खींच के हार लटकाए हैं. उससे वह वृक्ष कल्पवृक्ष के जैसा मालुम पड़ता है वहां रही हुई चैत्य की श्रेणियें झरते चन्द्रकांत मणियों से झरने वाले बड़े पर्वतों की लीला को विस्तारते हैं. चैत्य के आगे रत्न से बांधी हुई पृथ्वी में ताराओं के प्रतिबिंब गिरते हैं, वे देवताओंने रक्खी हुई पुष्पांजलि जैसा शोभता है. जिसमें बाल ललनायें खेलती हुई है ऐसी गृहवापिकायें, जिन

में से अप्सराएं निकलती है ऐसी क्षीर समुद्र की लक्ष्मी को हरलेती हैं. उसमें कंठ तक मग्न वनी हुई गोरे अंगवाली ओरतों के मुख से यह वापिकायें सुवर्ण के कमल वाली क्षण भर दिखाई देती हैं. नवीन मेघ से पर्वत नीचे की भूमि की तरह विशाल उद्यानों में उस नगरी की बाहर की भूमि श्याम रंग से रंगी हुई है. देवकृत वड़ी खाई से अष्टापद पर्वत की तरह मनुष्य कृत वड़ी खाई से उस नगरी का किल्ला चारों तर्फ से घेरा हुवा है. उस नगरी में स्वर्ग के कल्पवृक्ष की तरह घर घर मे दातार पुरुष सुलभ है. मगर याचक दुर्लभ होगये हैं.

यह नगरी में इक्ष्वाकु वंश रूपी क्षीर समुद्र में चन्द्र समान और सर्व शत्रु की लक्ष्मी को स्वयं वरपणे करने वाला संवर नामक राजा है. आज्ञा से ही सव पृथ्वी को साधने वाला यह राजा के म्यान में से कृपण के खजाने का द्रव्य की तरह कभी तलवार वहार नहीं निकलती. वड़ी भुजा वाला और अपना उग्र प्रताप से समर्थ ऐसा उस राजा ने एक चन्द्र वाला आ-काश की तरह समग्र पृथ्वी एक छत्रवाली की थी. उसने पृथ्वी को अच्छी धारण कीथी, नहीं तो दिग्यात्रा मे प्रमाण करने वाला वह राजा का सैन्य के वोज से पृथ्वी सहस्र तरह फट जाती. दिशा मे से दासी की तरह खींच के लाई चपल ऐसी

लक्ष्मी को भी उसने अपने गुण से कैद की थी. दूसरे राजा का बहुत दंड उसके पास आता तो भी उसको कभी गर्व नहीं होता क्योंकि नदी के जलसे समुद्र बिलकुल गर्व नहीं करता है. प्रसन्न चित्त वाला, हमेशां निर्लोभी और प्रमाद रहित ऐसा वह राजा धनाढ्य और दरिद्री में मुनि की तरह समदृष्टि से वर्त्तता था. वह प्रजा को धर्म के लिये शिक्षा करता था मगर धनकी इच्छा से नहीं करता और प्रजा का रक्षण के लिये शत्रु को शिक्षा करता मगर द्वेष बुद्धि से नहीं. एक तर्फ राज्य के तमाम कार्य और एक तर्फ धर्म का कार्य ऐसे कांटे की तरह सम भाग से वह अपने आत्मा में धारण करता था.

इस संवर राजा को सिद्धार्था नाम की राणी थी शुद्ध वंश में उत्पन्न हुई और गुणों से मनोहर वह राणी अंतःपुर के आभूषण रूप गिनी जाती थी. विलास से मंद ऐसी गति से और बहुत मधुर वाणी से वह मधुर आकृति वाली राणी राज हंसी की तरह शोभती थी. पवित्र लावण्य की सरिता रूप यह रमणी का मुख, नेत्र, हाथ, और चरण कमल के जैसे मनोहर थे. नेत्र रूपी कमल में से इन्द्र नीलमणी मय होवे, दांत में जैसे मोती जड़े हुवे होय, अधर पल्लव में जैसे मूंगा व्याप्त होवे, नाखुन में जैसे पद्मराग मणि से प्रचूर होवे, अंग उपर जैसे स्वर्णमय होवे और सर्व अंग जैसे रत्नमय होवे. ऐसी वह

महाराणी अति सुन्दरी मालुम होती थी. नगरी में जैसे अयोध्या, विद्या में जैसे रोहिणी और नदियां में जैसे गंगा वैसे ही वह देवी सतियां में अग्रेसर थी. कभी प्रेम से भी वह रानी अपने पति पर गुस्से नहीं होती, क्योंकि कुलवान औरतें व्रत की तरह अपने पतिव्रत पणा में अतिचार लगाने से डरती है. अपनी सब तरह अनुकूल ऐसी उस प्रिय राणी में राजा का नील रंग की तरह एकांत प्रेम था. मद होने के स्थानों में अबाधित रहने वाले वह राजदंपती सब धर्म को हानि न पहुंचे ऐसी रीति से सांसारिक सुख भोगते थे.

इस तर्फ महाबल का जीव विजय विमान में तेतीश सागरोपम का आयुष्य सुख मे भग्न से निर्गमन करके पीछे आयुष्य पूर्ण होने पर वैशाख मास की शुक्ल चतुर्थी को अभिजित नक्षत्र में चन्द्र आने पर वही महात्मा का जीव वहां से चव के सिद्धार्थी देवी के उदर में आये, जब तीन ज्ञान को धारण करने वाले प्रभु गर्भ में आये तब तीन जगत में उद्योत हो रहा. और नारकी के जीवों को भी क्षणभर सुख मिला, रात्रि में आराम से सोते हुए महादेवी ने रात्रि के आखिर पहर में अपने मुख में प्रवेश करते चौदह स्वप्न देखे. जिसमें चार दांत वाला श्वेत वर्णी हाथी (१) डोलर के पुष्प की तरह श्वेत वृषभ (२) चवडे मुख वाला केसरीसिंह (३) अभिषेक से मनोहर ऐसी

लच्मी (४) पंचवर्णी पुष्प की माला (५) परिपूर्ण चन्द्रमा (६) प्रकाशमान सूर्य (७) घुघरिये वाला ध्वज (८) सुवर्ण का पूर्ण कुंभ (९) कमल से छाया हुआ तालाव (१०) उछलता हुआ तरंग वाला समुद्र (११) सुन्दर विमान (१२) सुन्दर रत्न का ढेर (१३) और धूम्र रहित अग्नि (१४) इस तरह के चौदह स्वप्नों को देख के जागृत हुई देवी ने राजा को निवेदन किया, हे देवी ! इस स्वप्न से तुम को तीन जगत् का ईश्वर ऐसा पुत्र होगा ? ऐसे नरपति ने स्वप्न का अर्थ विचार कर कहा तुरत ही सव इन्द्रने भी वहां आके इकट्ठे हो के स्वप्न का अर्थ कहा के 'देवी ! तुमारा पुत्र चोथा तीर्थकर होगा' ऐसा स्वप्न का फल सुनके देवी को ऐसा हर्ष हुआ कि जिसके जोश से निद्रा दूर चली गई और वाकी शेष रात्रि उसने जागृतपने ही निर्गमन की, तवसे कमल कोश में वीज को-श की तरह सिद्धार्था देवी के उदर में वह गर्भ दिन २ गूढ बढने लगा. सिद्धार्था देवीने भी उस गर्भ को सुख में धारण किया. ऐसे पुरुष का जन्म समस्थ दुनिया के सुख के लिये होता है ।

गर्भ धारण किये वाद नवमास और साडे सात दिन वाद माघ मास की शुक्ल द्वितीया के दिन चन्द्र अभिचि नक्षत्र में आते देवी ने सूर्य जैसा तेजस्वी पुत्र को सुख से जन्म दिया.

यह कुंमर का सुवर्ण की तरह वर्ण था, और वानर का चिन्ह था. प्रभु का जन्म होते तीन लोक में उद्योत होगया. और क्षणभर नारकी के जीवों को भी सुख मिला. उस समय दिक्कुमारियें अपने अपने स्थान से वहां आके देवी और कुंवर का यथा योग्य सूतिकर्म किया, शक्रइन्द्र भी अपना आसन चलित होने से अर्हन् का जन्म जान के पालक विमान में वैठ के देवता के साथ वहां आये विमान पर से उतर प्रभु के सूतिकागृह में प्रवेश किया, स्वामी की और स्वामी की माता को उन्होंने नमस्कार किया. पीछे देवी को अपस्वापिनी निद्रा दी उनकी वाजू में प्रभु का प्रतिविंव रख के सौधर्म इन्द्र ने अपने पांच रूप बनाये. प्रथम एक रूप से इन्द्र ने प्रभु को धारण किये, दूसरे रूप से छत्र धारण किया, दो रूप से दोनों वाजू चंवर और एक से वज्र को नचाता हुवा आगे चला, पीछे क्षण भर में मेरु पर्वत के उपर आकर अति पांडुकवला नामकी शिला के उपर सिंहासन पर प्रभु को गोद में लेकर बैठा उस समय वहां परिवार के साथ में दूसरे तेंसठ ६३ इन्द्र भी वहां आये और जल से भरे हुवे कुंभों से विधि पूर्वक स्नान कराने लगे, पीछे ईशान इंद्र ने पांच रूप करके एकरूप से प्रभु को लिये, और एकरूप से छत्र धारण किया, दो रूप से दोनों बाजू चंमर डुलाने लगा और एकरूप से त्रिशूल लेके आगे खड़ा

रहा, पीछे शक्रइंद्र ने तुष्टि के लिये चार दिशा में सफेद चार वृषभ बनाये उनके शृंग में से होती जलकी धाराओं से प्रभु को स्नान कराया बाद में चंदन का विलेपन कर वस्त्र अलंकारादिक धारण कराके और आरात्रिक उतार के शक्रइंद्र अंजलि जोड के इस तरह से स्तुति करने लगा.

चोथे तीर्थंकर, चोथे आरे रूप आकाश में सूर्य समान और चोथा पुरुषार्थ मोक्ष की लक्ष्मी को प्रकाश करने वाले हे प्रभु! आप जय पाओ, हे नाथ! लंबे काल से आपसे सनाथ हुवा हुवा यह जगत् अब विवेक चोरी करने वाला मोहादिक से कब भी उपद्रव को नहीं पाते हैं प्रभु! आपके पाद पीठ में जिसका मस्तक लौटता है, ऐसे मेरे अंदर पुण्यरूप परमाणु का कण जैसी आपकी चरण ही दीर्घकाल स्थापन हो हे ईश! मेरे नेत्र आपके मुख के विषे आसक्त होने से नहीं देखने योग्य वस्तु को देखने से उत्पन्न हुवा यह हर्षाश्रुकी उर्मियो से नेत्र के मैल को क्षणभर में धो डालो हे प्रभु! लंबे काल की ममता का दर्शन से उत्पन्न हुवा मेरे रोमांचों में चिरकाल की कुमत की वासना को दूर करो. हे नाथ! मेरे नेत्र हमेशा तुम्हारे मुख को देख के विलास पाओ मेरे हाथ तुम्हारी उपासना करो, और मेरे कान आपके गुण को सुनने वाले हो, हे देवाधिदेव! कुंठ "ऐसी मेरी बुद्धि जो तुम्हारे गुण को ग्रहण

करने की तर्फ उत्कण्ठा वाली होवे तो "उसका कल्याण हो, क्योंकि उसको दूसरे से क्या करना है हे नाथ! मैं तुम्हारा, शिष्य, दास, सेवक और किंकर हूं इस प्रमाण में आप स्वीकारो इससे ज्यादा दूसरा कुछ मैं नहीं कहना चाहता"

इस तरह स्तुति कर शक्र इन्द्र पांच रूप में होके, इशान इन्द्र के पास से प्रभु को लेके पूर्व की तरह छत्र वगैरह धारण कर क्षण भर में पीछा प्रभु के घर पहुंचा, वहां प्रभु की माता की अवस्वापिनी निन्द्रा और प्रभु का प्रतिबिंब को लोपकर साक्षात् प्रभु को वही स्थिति में माता के पास स्थापन किया. पीछे शक्र इन्द्र वहां से और दूसरे इन्द्र मेरु उपर से ही जैसे आए थे वैसे ही पीछे अपने स्थान को चले गये. प्रातः काल में संवर राजा ने सब लोक में हर्ष का एक छत्र रूप पुत्र का जन्मोत्सव किया, जब प्रभु गर्भ में थे तब कुल, राज्य और नगरी सर्व अभिनंद (हर्ष) पाये थे. उससे माता और पिता ने उनका अभिनंदन ऐसा नाम रक्खा. अपने अंगुष्ठ में से इन्द्रने रक्खे हुए अमृत का पान करते और देवांगना रूप धात्रिओं ने पालन कराते प्रभु अनुक्रम से बढने लगे, विचित्र प्रकार के खिलोने हाथ में रख के आते ऐसे सुरअसुर कुमार के साथ विचित्र खेलों से खेला करते ऐसे प्रभुने अपना बाल्यवय व्यतीत किया. उद्यान का वृक्ष जैसे वसंत को पावे, तैसे ही प्रभु

को सर्व अंग में शोभा देने वाला यौवनवय प्राप्त हुआ. साढे तीनसो धनुष ऊंची काया झूले वाला जैसे वृक्ष होवे या लक्ष्मी के जैसे दो झुले बांधे होवे ऐसी घुटने पर्यंत लंबायमान, दो भुजा, अर्धचन्द्र की तरह शोभायमान ललाट, और पूर्ण चंद्र की शोभा तुल्य मुख से प्रभु विशेष शोभा को प्राप्त हुए। सुवर्णमय मेरु पर्वत की शिला जैसी छाती, पुष्ट स्कंध, कृश उदर, और मृगली के जैसी जंघायें और कूर्म के जैसी उन्नत चरण से प्रभु मनोहर दीखते थे. जो के प्रभु विषय में निःस्पृह थे तो भी अपना भोग्य कर्म जान के माता पिता की प्रार्थना से उन्होंने अनेक राज पुत्रियों के साथ विवाह किया. तारों के साथ में चन्द्र की तरह वह राजकुमारियों के साथ में क्रीडा करने के उद्यान, तलाव, वापी और पर्वत वगेरह में प्रभु स्व इच्छा से विहार करने लगे.

इस तरह प्रभुने अहमिंद्र की तरह सुख में ही मग्न रह के साढे बारह लाख पूर्व निर्गमन किया, पीछे संवर राजा ने प्रभु की प्रार्थना करके राज पर बिठाये, और आपने प्रव्रज्या रूपी राज्य ग्रहण किया. प्रभुने एक ग्राम की तरह उस पृथ्वी का राज्य लीला मात्र से चलाने लगे, जगत् का रक्षण करने में चतुर ऐसे प्रभु को इतनी पृथ्वी का पालन करना वह क्या गिनती में है? इस तरह राज्य करते प्रभुको आठ अंग सहित साढे छत्तीस लाख पूर्व गमन होगये.

अनुक्रम से प्रभु को दीक्षा लेने की इच्छा हुई उस समय भाव को जानने वाले मंत्रियों की तरह लोकांतिक देवता आके इस तरह विज्ञप्ति करने लगे 'हे नाथ! अब संसार वास में अधिक लाभ क्या इसलिये धर्म तीर्थ प्रवर्त्तावो, तुम्हारे प्रवर्त्ताये हुवे तीर्थ से दूसरे भी अनेक प्राणी यह दुस्तर संसार रूप सागर को तरेंगे ? इस तरह से विज्ञप्ति करके लोकांतिक देवता गये बाद प्रभु ने नियाणा रहित वार्षिक दान देने का आरम्भ किया. इन्द्र की आज्ञा से कुबेर के हुक्म से जृम्भक देवता द्रव्य ला लाके प्रभु को दान देने के लिये पूरा करने लगे. सांवत्सरिक दान देने के बाद चोसठ इन्द्रों ने प्रभु का विधि के साथ दीक्षाभिषेक किया, पीछे अंग राग लगा के दिव्य वस्त्र और आभूषण धारण करके जगत्पति स्वार्थ सिद्धि करने के लिये अर्थ सिद्ध नामकी पालकी पर आरूढ हुये. पहले मनुष्य ने और पीछे देवता ने उस पालकी को उठाली, पालकी पर बैठ के प्रभु सहस्राम्र वन में गये, वहां उन्होंने अपने आभूषण वगैरे सब उतार के छोड़ दिये तब इन्द्र ने उनके खांधे पर देव दूष्य वस्त्र डाला, माघ मास की शुक्ल द्वादशी के अभिजित नक्षत्र में दिन के पीछे के भाग में प्रभु ने छठ तप करके पंच मुष्टि लोच किया. शक्र इन्द्र प्रभु के केश को अपने उतरीय वस्त्र के पल्ले में लेके क्षणभर में क्षीर समुद्र में डाल के वापिस आये. पीछे इन्द्र

ने सुर असुर और मनुष्य सम्बन्धी कोलाहल को शांत कराया तब प्रभु ने सामायिक सूत्र पढ के चारित्र को स्वीकार किया उस समय में मनः पर्यव नामका चौथा ज्ञान उत्पन्न हुवा उस समय क्षणभर नारकी के जीवों को सुख मिला शरीर के मल की तरह राज को छोड दूसरे एक हजार राजा ने प्रभु के साथ ही मोह को नाश करने वाली प्रवज्या ग्रहण की पीछे. प्रवासी पुरुष वर्षाऋतु में जैसे अपने स्थान में चले जावे वैसेही शक्र वगैर सब इन्द्र परिवार सहित प्रभु को नमस्कार करके अपने अपने स्थान को गये.

दूसरे दिन अयोध्या नगरी का राजा इन्द्रदत्त के घर प्रभु ने परमान्न (क्षीर) से पारणा किया. उस समय देवता ने द्रव्य की वृष्टि, पुष्प की वृष्टि, सुगंधि जल की वृष्टि, आकाश में दुंदुभि का नाद और वस्त्र का उत्क्षेप किया, हर्ष से परवश हुवे हुवे सुर, असुर और मनुष्यों ने 'अहो दान, अहोदान, अहोसुदान ऐसी उद्घोषणा की वहां से श्री अभिनदन स्वामी ने दूसरे ठिकाणे विहार किया. प्रभु के चरण स्थान में इन्द्रदत्त ने पूजन करने की इच्छा से एक रत्न पीठ कराया प्रभु ने छद्मस्थपणे परिसहों को सहन कर अठारह वर्ष तक विविध अभिग्रह धारण करते करते विहार किया.

इस तरह विहार करते करते प्रभु एकदा सहस्राम्र वन में

आये, वहां छठ तप कर खिरणी के वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग करके रहे ध्यान में वर्तते शुक्ल ध्यान के दूसरे पाये के अंत में घाति कर्म का क्षय होते पोस मास की शुक्ल चतुर्दशी की अभिजित नक्षत्र का चंद्रयोग होते ही प्रभु को निर्मल केवलज्ञान प्रगट हुवा जो ज्ञान क्षण भर नारकी के जीवों को भी दुःख का नाश करने में औषध रूप होगया. अवधि ज्ञान से प्रभु को केवलज्ञान होने की खबर जानके चोसठ इंद्रों ने वहां आके एक योजन प्रमाण प्रदेश में समवसरण बनाया। देवता के संचार किये हुवे सुवर्ण कमल पर चरण को धारण करते प्रभु ने पूर्वद्वार से उस में प्रवेश किया समवसरण के मध्य मे रहा हुवा दो कोश और दो सो धनुष ऊंचा चैत्य वृक्ष की प्रभु ने प्रदक्षिणा कर नमोतित्थस्स 'तीर्थायनमः' ऐसे बोलते प्रभु ने देव छंद के मध्य भाग में रहे हुवे पूर्वाभिमुख सिंहासन को अलंकृत किया। पीछे देव असुर और मनुष्य सहित चतुर्विध संघ अपने अपने योग्य द्वार से प्रवेश कर योग्य स्थानक पर बैठे उस समय भगवान को नमस्कार कर अंजलि जोड शक्रेन्द्र ने रोमांचित शरीर से नीचे मुजब प्रभु की स्तुति की.

हे भगवन्! आपने सर्वदा कष्ट करने वाली ऐसी मन वचन और काया की चेष्टा का संहार कर शिथिल पने से मन रूपी शल्य को अलग किया है. हे नाथ! तुम्हारी इन्द्रियें स्वा-

ह भी नहीं. ऐसे ही उच्छृंखल भी नहीं, ऐसे सम्यक् प्रकार से प्रतिपादन करके तुमने इन्द्रियों का जय किया है योग के जो आठ अंग कहे हैं वे तो फक्त प्रपंच मात्र हैं. नहीं तो यह योग बालपने के आरम्भ में तुम्हारी सात्म्यता को क्यों प्राप्त होवे ? हे स्वामिन् ! लम्बे काल से साथ रहने वाले विषयों में तुमको विराग है. और अदृष्ट ऐसे योग में सात्म्यपणा है, यह हमको तो अलौकिक लगता है. जैसा तुम अपकार करने वाले पर राग धरते हो ऐसे दूसरे उपकार करने वाले पर भी राग धरते नहीं, अहो ! तुमारा सब अलौकिक है ? हे प्रभु ! तुमने हिंसक पुरुष के ऊपर उपकार किया, और जो आश्रित थे, उन की उपेक्षा की, ऐसे तुम्हारे विचित्र चरित्र को कोन अनुसरे ? हे भगवन ? परम समाधि में तुमने तुमारे आत्मा को इस प्रकार से जोड दिया है के जिसमें 'मैं सुखी हूं के दुःखी हूं या सुखी के दुःखी नहीं' ऐसा तुम्हारे दिल में भी आता नहीं जिस में ध्याता, ध्यान और ध्येय यह त्रिपुटी एकात्मा को पाई है, ऐसे तुम्हारे योग को महात्म्य पर दूसरों को कैसे श्रद्धा होवे ?"

इस तरह स्तुति करके इन्द्र चुप हुए, तब प्रभुने एक योजन तक फैलती गंभीर गिरा से देशना देनी शुरु की.

यह संसार एक विपत्ति की खानि है. उसमें गिरते मनुष्य के पिता, माता मित्र, बन्धु या दूसरे कोई भी शरणरूप होते

नहीं। इन्द्र और उपेन्द्रादि जैसे भी जो मृत्यु के सपाटे में आते हैं वह मृत्यु को भी पीडा करने वाला ऐसा कोन आदमी शरण इच्छित जनों को शरण देने को समर्थ है? अहा! इस संसार में पिता, माता, बहन, भाई और पुत्र देखते हैं और रक्षण विना के इस जीव को उनके कर्म यमराज के गृह में खींचके लेजाते हैं मूढ बुद्धिवाले पुरुष अपनी कर्म से मृत्यु को पानेवाले जनको देखके शोक करते हैं, मगर 'अपने आत्मा को भी कर्म इसी तरह लेजावेंगे' ऐसा शोक नहीं करते. बड़े भयंकर जंगल में मृग के बच्चों की तरह दुःख रूपी दावानल से प्रज्वलित ज्वालाओं से विकराल ऐसे इस संसार में प्राणी को शरण भूत कोई नहीं. अष्टांग आयुर्वेद से संजीवन की औषधियों से और मृत्युंजयादिक मंत्रों से रक्षण नहीं होता. खड्ग के पींजरे का मध्य भाग में रहा और चतुरंग सेना से घिरा हुआ बड़ा राजा को भी यमराज के किंकरों रंक की तरह हठ से खिंच जाते हैं. जैसे पशु मृत्यु से बचने का उपाय नहीं जानते तैसे विद्वान् भी नहीं जानते, वह कैसी मूढता कहना? जो खड्ग के साधन से पृथ्वी को निष्कंटक करते है वह यमराज की भ्रकुटी से भय पाके मुखमें उंगलीयां डालते हैं, यह कैसी विचित्र बात? पाप रहित मुनियों के खड्ग की धारा जैसे व्रत भी मृत्यु का उपाय नहीं कर सकते. अहा! शरन विगर का विना राजा के, विना

नायक के, और उपाय विगर के यह जगत् यमराज रूपी राक्ष स से निगल जाते हैं !! जो धर्म रूप उपाय है तो भी मृत्यु के सामने चलता नहीं, मगर वह उपाय शुभगति को देनेवाला गिनते हैं उससे प्रवज्या रूप उपाय को ग्रहण करके जिसमें अक्षय सुख है ऐसा मोक्ष के लिये प्रयत्न करना"

ऐसी प्रभुकी देशना (उपदेश) से अनेक नरनारियों ने तत्काल दीक्षा ली. और वज्रनाभ वगैरह एकसो सोलह गणधर हुवे. उनको विधि मुजब अनुयोग ओर गणकी अनुज्ञा देके प्रभु ने शिक्षा रूप धर्म देशना दी. पीछे प्रभु ने उत्पाद, व्यय ओर ध्रुव मय त्रिपदी उनको कह वताई, उस त्रिपदी के अनुसार से उन्होंने द्वादशांगी की रचना की. थोड़ी देरमें पौरुषी पूरी हुई तव प्रभुने देशना समाप्त की. पीछे राजा ने वलि मंगाकर उसको उडाई उसको देवता, राजा और मनुष्य, अनुक्रम से लेगये. पीछे जगत्पति वहां से उठके वीचके किल्ले में आके इशान दिशा में रहा हुवा देव छंदे (कमरे) में विराजमान हुये. प्रभुके चरण पीठपर वैठ के वज्रनाभ गणधर के जिनको लोगों ने केवली जैसे जाने थे और जो श्रुत केवली थे वे देशना देने लगे. जब दूसरी पौरुषी पूर्ण हुई तव उन्हों ने देशना समाप्त की. उस समय देवता वगैरह सव प्रभु को नमस्कार करके अपने अपने स्थान पर गये.

उनके तीर्थ मे शासन देव के पदपर श्यामकांति वाला हाथी के वाहन पर बैठने वाला दो दक्षिण भुजा में बीजोरे ओर अक्षसूत्र धारन करने वाला ओर दो वाम भुजामें नकुल ओर अंकुश को रखने वाला यक्षेश्वर नामका यक्ष हुवा, जो के हमेशा प्रभुके पास सेवामें तत्पर रहता था, ओर श्याम वर्ण वाली. कमल के आसन पर बैठने वाली दक्षिण दो भुजा में वरद ओर पाश को धारण करने वाली, और दो वामभुजा में नाग और अंकुश धारण करने वाली कालिका नामकी एक नित्य प्रभुके पास रहने वाली शासन देवता हुई. चोतीश अतिशयों से युक्त ऐसे प्रभु ग्राम आकर ओर नगर वगैरह में प्राणियों को बोध करते विहार करने लगे.

तीन लाख साधु, छ लाख ओर बतीस हजार साध्वियें नो हजार आठसो अवधि ज्ञानी, एक हजार पांचसो चोदपूर्वी, ग्यारह हजार छस्से पचास मनः पर्यवज्ञानी, चोदह हजार बाद लब्धि वाले. दो लाख अठ्यासी हजार श्रावक, ओर पांचलाख सत्ताईस हजार श्राविकाये इतना परिवार प्रभु को पृथ्वी में विहार करते करते हुवा केवल ज्ञान प्राप्त हुए बाद आठ पूर्वांग ओर अठारह वर्ष कम एक लाख पूर्व व्यतीत हुआ था तब अपना निर्वाण काल समीप जानके प्रभु समेतशिखर पर्वत पर पधारे. वहां इंद्र सहित देवता ओर राजाने सेवे हुये प्रभुने एकहजार

मुनियों के साथ एकमास का अनशन ग्रहण किया. पीछे भवोप ग्राही कर्म का भेदने वाला ऐसा शैलेशिध्यान पर आरुढ हो के अनंत चतुष्कों को सिद्ध करके भगवान् अभिनंदन प्रभु वैशाख मास की शुक्ल अष्टमी के रोज चंद्र पुष्य नक्षत्र में आते एक सहस्र मुनियों के साथ मोक्षपद को प्राप्त हुये.

कुमार अवस्था में साडे बारह लाख पूर्व, राज्य में आठ पूर्वांग सहित साडी छतीस लाख पूर्व ओर दीक्षा में आठ पूर्वांग कम एकलाख पूर्व एकंदर पचाश लाख पूर्वका आयुष्य प्रभुने निर्गमन किया. संभवस्वामी के निर्वाण पीछे दशलाख क्रोड़ सागरोपम वीते तव अभिनन्दन स्वामी निर्वाण पदको पाये.

श्री अभिनन्दन स्वामी ने काल किये वाद सुर असुरों ने उन का ओर दूसरे मुनियों का अग संस्कार किया, ओर प्रभु की दाढ, दांत ओर अस्थि वो पूजन के लिये लेगये. पीछे वे नंदीश्वर द्वीप में जाके शाश्वत अर्हत के बिंब का अष्टान्हिक उत्सव करके अपने अपने देवलोक में गये, और निर्वाण स्थान पर आये हुवे राजा अपनी अपनी राजधानी में गये.

इत्याचार्य श्रीहेमचन्द्र विरचिते त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्ते महाकाव्य तृतीय पर्वाणि श्रीअभिनन्दन स्वामि चरित्त वर्णो

को नाम द्वितीय सर्गः समाप्त ॥ २ ॥

॥ तृतीय सर्गः ॥

सुमतिनाथ चरित्र ।

यह अपार संसार रूप महासागर को उतरने में मर्यादा रूप उत्कृष्ट ज्ञान के हेतु ऐसे श्रीसुमतिनाथ भगवान को नमस्कार कर, भव्य प्राणी के कल्याणरूप वृक्ष को बड़ा करने में पानी की नाली जैसा यह प्रभु का चरित्र उन्हों के प्रसाद से कहने में आवेगा.

इस जंबुद्वीप में पुष्कल ऋद्धि से पूर्व विदेह में तिलकरूप पुष्कलावती नामकी एक विजय है. उसमें शंखपुर नामका एक सुन्दर नगर है. उसमें बडे चैत्य और हवेलियों की विचित्र ध्वजा से सब आकाश व्याप्त होरहा है. उस नगर में विजय करने वाला विजयसेन नामका राजा राज्य करता है. भुजवीर्य से शोभा वाली वह राजा की सेना सिर्फ शोभा के लिये थी. सब अंतःपुर की स्त्रियों में आभूषण रूप सुदर्शना नामकी एक पटराणी थी, जो चन्द्र की लेखा की तरह हमेशा सुदर्शना थी. रति के साथ में कामदेव की तरह विस्तृत वैभव वाला विजयसेन राजा उसके साथ में क्रीड़ा करते अपना समय निर्गमन करता था.

एक समय कोई उत्सव का दिन आते नगर के लोग सब समृद्धि और परिवार के साथ उद्यान में क्रिडा करने गये. उस समये जैसे मूर्तिमान् राज्य लक्ष्मी होवे ऐसे सुदर्शना राणी भी छत्रचामर से अलंकृत ऐसी एक हथनी पर बैठ के उस उद्यान में आई, वहां जैसे दिक् कन्यायें होवे ऐसी अमूल्य आभूषणों की शोभा को धारण करने वाली आठ स्त्रियों से सजी हुई कोई एक स्त्री उसके देखने में आई. अप्सरायें जैसे इन्द्र की उपासना करे तैसे यह आठ वधुओंसे उपासना कराई हुई यह सुन्दर स्त्री को देख के सुदर्शना अपने चित्त में परम विस्मय पाई. 'यह स्त्री कौन है, और उसके पास रही हुई दूसरी आठ बालायें कौन हैं ? यह जानने के लिये देवी सुदर्शना ने अपने एक नाजर को तपास करने की आज्ञा दी. वहां जाके पूछ कर आ के देवी सुदर्शना को वह कहने लगा के, हे महाराणी ! यह स्त्री इस नगर के प्रतिष्ठित श्रेष्ठीनंदिषेण की सुलक्षणा नाम की स्त्री है. यह सुलक्षणा के दो पुत्र हैं. और उसके प्रत्येक पुत्रके चार २ स्त्रियें हैं. वे आठ स्त्रियें दासी की तरह अपनी सासु की सेवा करने को यहां साथ में आई है, इस तरह सुन के सुदर्शना चित्तमें विचार करने लगी के 'अहा ! इस शेठाणी को धन्य है के जो पुत्रका सुख देखती है, और जैसे नागकन्या होवे ऐसी स्वरूपवान और कुलवान आठ पुत्र वधुयें जिसकी

हमेशा सेवा करती हैं. मेरे जैसी पुण्य रहित स्त्री को धिक्कार है के जिस के पुत्र वा पुत्रवधू कुछ नहीं. जोके मेरे पति का एक हृदय रूप हूं. तो भी मेरा जीवन वृथा है. इधर उधर अपने हाथ को उछालता और चारों तर्फ धूलमें धूसर बना हुआ पुत्र वृक्ष पर वानर की तरह पुण्यवंती स्त्रियों के उत्संग में ही क्रीडा करता हैं. विना फल की वल्ली की तरह और जल विना के पहाड़ की तरह पुत्र विना की स्त्रियां शोक करने लायक और निंदने लायक हैं. जिस स्त्री को पुत्रका जन्म, नाम, चूडा और विवाहादि संस्कार के महोत्सवों की प्राप्ति नहीं उन स्त्रियों को दूसरे उत्सव क्या काम के हैं ?

इस तरह विचार करती सुदर्शना देवी हिम से दुःखी पद्मिनी की तरह कुमलाये हुवे मुखवाली हो के खेद के साथ अपने घर में वापिस आई, अपनी प्रिय सखियों को विदा कर जैसे व्याधि वाली होवे ऐसे निःश्वास रख के शय्या पै गिरी. वहां वो कुछ भी बोलती नहीं, खाती नहीं, और कुछ शृंगार भी करती नहीं थी सिर्फ रत्न की पुतली की तरह शून्य दिल से पड़ रही थी. परिवार के मुंह से उसकी ऐसी स्थिति मालुम हुई तब महाराजा विजयसेन वहां आके प्रेम युक्त कोमल वाणी से कहने लगे, हे देवि! मैं खुद तेरे आधीन होते तेरा कोनसा मनोरथ अपूर्ण है कि जिससे मरुस्थल में गिरी

हुई हंसली की तरह तूं तड़फती है ? क्या तेरे को कुछ अंदर की पीड़ा है ? या कोई नवीन व्याधि हुई है ? या कोईने तेरी आज्ञा उल्लंघन की है ? कि तूंने कोई दुःस्वप्न देखा है ? या कोई बाह्य वा अभ्यंतर अपशुकन हुवा है ? अगर कुछ भी तेरे को खेद होने का कारण होवे वो कहदे मेरे में तेरे को कुछ भी छिपाना नं चाहिये. सुदर्शना निःश्वास रखके गदगद स्वर से बोली, हे प्रियनाथ! तुम्हारे प्रसाद से तुम्हारी तरह मेरी आज्ञा को किसी ने भी खंडित नहीं की, तैसे आधि, व्याधि, दुःस्वप्न, अपशुकन के दूसरा कोई भी मेरे को पीड़ा नहीं करता; मगर एक, बात मेरे को बहुत दुःख देती है, वो यह है कि जब तक अपन ने पुत्र का मुख नहीं देखा तब तक राज्य संपत्ति, विषय सुख, और अपन दोनों की प्रीति यह सब व्यर्थ है. जैसे निर्धन पुरुष लक्ष्मीवान की लक्ष्मी को देख के उसकी इच्छा करते हैं वैसेही पुत्रवान के पुत्र को देख के मैं भी उसी तरह इच्छा करती हूं वो कितनी भारी खेद की बात है ? जो अपन मन रूपी कांटे में एक तर्फ सब सुख और दूसरी तर्फ पुत्र प्राप्ति का सुख रखके तोलेंगे तो उसमें पुत्र प्राप्ति का सुख अधिक होगा। वन में पुत्र परिवार के साथ फिरते ऐसे मृगादिक पशु अच्छे हैं, मगर पुत्र रहित ऐसे अपने को धिक्कार है क्योंकि उन से भी अपना भाग्य अल्प है !

पीछे राजा बोला—हे देवी ! तुम धीरज धरो, देवता का आराधन करके मैं तुमारा मनोरथ थोड़े समय में पूरा करूंगा. जो पराक्रम से असाध्य है, जो बुद्धि से अगोचर है, जो मंत्र को विषय नहीं, जो तंत्र से दूर है, और दूसरे उपायों से भी जो अगम्य है ऐसे पुरुषार्थ को प्रसन्न हुये देवी देवता साथ देते हैं. हे मानिनी ! यह तुमारा मनोर्थ अब सिद्ध होगया है ऐसे ही जानो, अब शोक क्यों करते हो ? मैं पुत्र के लिये बहुत करके अपनी कुलदेवी के पास ही जाके बैठुंगा'.

इस तरह राणी को धीरज देके विजयसेन राजा स्नान करके पवित्र वेष पहन के अपने मंदिर में से निकल के कुल-देवी के स्थान में गया. वहां वह कुल देवता की पूजा करके पुत्र का लाभ होवे वहां तक अन्नपान का त्याग करके दृढ निश्चय करके बैठा. जब छठ्ठा उपवास हुआ तब कुलदेवी प्रत्यक्ष आई, और 'हे महीपति ! वरदान मांग' ऐसे प्रसन्न होके कहा. राजा विजयसेन देवी को नमस्कार करके बोला, हे कुलदेवी ! आप प्रसन्न हो के सर्व पुरुष में उत्कृष्ट ऐसा मुझे पुत्र लाभ दो'. देवलोक में से चव के कोई उत्तम देवता तुमारा पुत्र होगा ! ऐसा वरदान देकर कुलदेवी तत्काल अंतर्ध्यान होगई. राजाने देवी के दिये हुवे वरदान की बात अपनी प्रिया को कही. उस से मेघकी गर्जना से बुगली की तरह उस बात से राणी बहुत

हर्ष पाई. दूसरे ही दिन ऋतु स्नान की हुई सुदर्शना देवी की कुक्षि में देवलोक में से च्यव के कोई महर्द्धिक देवता उत्पन्न हुवा उस समय सूते हुये महादेवी ने केसर के जैसा लाल केशरा वाला एक किशोर केसरीसिंह अपने मुखमें प्रवेश करता देखा. तुरत ही भय पाके राणीने शय्या पर से बैठे होके अपने मुख में सिंह दाखल हुआ ऐसी स्वप्न की वात राजा को कही. यह सुनके महाराजा बोले 'हे देवी! इस स्वप्न से कुलदेवी के वरदान रूपी वृक्ष का ऐसा फल प्रकाशित किया है के सिंह के जैसा पराक्रमी तुम्हारे एक पुत्र होगा' ऐसा स्वप्न का विचार सुनके राणी बहुत प्रसन्न हुई, और बाकी की रात्रि शुभ कथायें करते जागृतावस्था में ही निर्गमन की.

उत्तम सरिता के जल में सुवर्ण के कमल की तरह देवी की कुक्षि में वो गर्भ दिन पै दिन बढने लगा. एक दिन देवी अपने को उत्पन्न हुवा हुवा दोहद महाराजा को कहने लगी कि 'मैं सब प्राणी को अभय देने को इच्छती हूं, सब नगर वगैरह में अमारी घोषणा करने को इच्छती हूं, और समग्र जिन चैत्यों में अष्टान्हिक उत्सवों करने की अभिलाषा रखती हू. राजा ने कहा 'हे देवि! गर्भ के प्रभाव से कुलदेवी के वरदान को और स्वप्नार्थ को सत्य करने वाला ऐसा यह तुम्हारा दोहद है उत्तम इच्छा वाले गर्भ के प्रभाव से ही तुम्हारी ऐसी इच्छा

हुई है, क्योंकि प्रतिमा का प्रभाव अधिष्ठायक देव को उचित होता है' इस तरह कहकर राजा ने भय पाये हुये को अभय-दान दिया, पटहवजवा के सब स्थान पर अमारी घोषणा कराकर और अष्ट प्रकारी पूजा से और दिव्य संगीत से हरेक चैत्यों में अष्टान्हिक उत्सवों कराये.

यह दोहद पूर्ण होने से पूर्णचन्द्र के जैसी उज्वल मुखवाली देवी प्रसन्न हुई और समय आया तब वेल जैसे फल को जन्म देवे तैसे एक पुत्र रत्न को उसने जन्म दिया उस समय सब राजा में शिरोमणि विजयसेन राजाने चिंतामणि रत्न की तरह उद्घोषणा कराके याचकों को इच्छित दान देना शुरू किया. और हृदय रूप समुद्र को चन्द्र समान बड़ा महोत्सव किया उसके बाद उसी तरह स्व जनों की तरह नगर जनों ने भी महोत्सव किया पीछे देवी के स्वप्न के अनुसार महाराजा ने पुत्र का पुरुषसिंह ऐसा मनोहर नाम रक्खा. अनुक्रम से वृद्धि पाके विशाल भुजा वाला वो कुमार रूप से, कला से और कुल से अपने सदृश ऐसी राजाओं की आठ कन्याओं से शादी की अप्सराओं के साथ देव की तरह उन्हों के साथ विजयसेन राजा का कुंवर निरंतर क्रीडा करता विषय सुख भोगने लगा.

एक समय जैसे साक्षात् वसंत होवे या जैसे साक्षात् वसंत

का मित्र कामदेव होवे ऐसे यह कुंवर स्वइच्छा से क्रीड़ा करने को उद्यान में गया. वहां रूपसे और शम से आनन्द को जय करने वाले विनयनन्दन नाम के मुनि को आये हुवे उसने देखे. उनको देखते ही जैसे अमृत का पान किया होवे तैसे कुंवर के लोचन, हृदय और दूसरे अंग भी पूर्ण विकाश पाये. क्षणभर उनको देखकर राजकुंवर विचार करने लगा कि 'जैसे वेश्या के पास रह कर सती व्रतका पालना, चोरके पास रहके निधान को छिपाना, युवान मार्जार (बीलाडा) पास रहके अमृत के आसव (रस) का रक्षण करना और डाकण के पड़ोश में रहके अपनी कुशलता रखनी मुश्किल है, इसी तरह यह मुनिका अनुपम रूप और योवन वय देखते विषय वृत्ति रूप उन्माद का हेतु उदय पावे ऐसा दिखता है. तोभी ऐसे कठिन व्रत का धारण करना दिखता है वो वैसाही मुश्किल है. हेमंतऋतु में हिम, ग्रीष्मऋतु में सूर्यका ताप और वर्षाऋतु में झंझावात सहन होवे मगर योवन में कामदेव का उपद्रव सहन हो नहीं सकता. तो भी ऐसे कामदेव को जीतने वाले मुनि, आज पुण्यानुबंधी पुन्य से भाग्योदय से मेरे देखने में आये हैं कि जैसे माता पिता या गुरु होवे ऐसे मेरेको प्रीति उत्पन्न कराते हैं, इसतरह विचार करके राजकुंवर सत्वर उनके पास आया, और हृदय को आनन्द देनेवाला वो विनयनन्दन मुनि को उसने वंदना की

मुनि ने कल्याण रूपी अंकुर को उत्पन्न करने में मेघवृष्टि जैसी धर्मलाभ रूप आशिष देके राजपुत्र को आनंदित किया पीछे कुंवर नमस्कार करके बोला, हे मुनिराज! नव यौवनवान् होने पर तुमने ऐसा व्रत धारण किया है कि जो देखके मेरेको ताज्जुब होता है, ऐसी वयमें तुम यत्न पूर्वक विषयों से विमुख हुये हो जो विषयों के किम्पाक फल की तरह बुरे विपाक मैं भी जानता हुं. इस संसार में मैं भी कुछ सार देखता नहीं हुं किन्तु ऐसे संसार का परिहार करने को आपके जैसे पुन्यवान पुरुष ही उद्युक्त होते हैं. हे स्वामी! आप इस संसार तिरने का उपाय मेरेको बताओ और सार्थवाह जैसे यात्री को लेजावे, ऐसे ऐसे मेरेको तुमारे मार्ग में लेजाओ. हे महामुनि! कंकर को देखते जैसे पर्वत परसे माणिक्य मिल जावे ऐसे क्रीड़ा करने को आया हुवा मेरेको यहांपर आप प्राप्त हुये हो.

इस तरह उस राजकुंवर ने कहा तब कामदेव के शत्रु ऐसे वो महामुनि नवीन मेघके जैसी गंभीर गिरा से इस तरह बोले. जैसे मांत्रीक पुरुष को सर्व भूत पिशाच शांति के लिये होते हैं ऐसे वैराग्यवान् पुरुष के योवन, ऐश्वर्य और रूपादिक जो मदके स्थान हैं व शांति के लिये होते हैं.

श्री भगवंत ने संसाररूप समुद्र को तिरने में उत्तम जहाज की तरह यति धर्म कहा है, यह यति धर्म अहिंसा, सत्य अचौ-

र्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, तप, क्षमा, निरभिमानता, सरलता, और निर्लोभता यह दस प्रकार का है, प्राणातिपात निवृत्ति वह संयम; असत्य वचन का परिहार करना वह अमृषावाद अदत्तादान (चोरी) वर्जे के संयम की शुद्धि रखनी वह अचौर्य; नव गुप्ति के साथ काम इन्द्रिय का संयम करना वह ब्रह्मचर्य, शरीर आदि से भी ममता रहितपणा वह अकिंचनता, अनशन, औनोदरी, वृत्ति संक्षेप, रस त्याग, तनुक्लेश और संलीनता यह छः प्रकार के बाह्य तप और प्रायश्चित्त, वैयावृत्य, स्वाध्याय; विनय, कायोत्सर्ग, और शुभ ध्यान यह छः प्रकार के अभ्यन्तर तप यह दोनों मिलके बारह प्रकार के तप, शक्ति वा अशक्ति होने पर क्रोध का निग्रह कर सहन करना यह क्षमा, मान का जय करके मद के दोष का त्याग करना यह निरभिमानता माया को जीतके मन वचन काया से वक्रता को छोड़ देना वह सरलता, और बाह्य या अभ्यंतर वस्तु में तृष्णा का विच्छेद वह निर्लोभता, यह दस प्रकार का धर्म संसार समुद्र से पार उतारने में समर्थ है, और वह निर्दोषधर्मचिंतामणि रत्न की तरह इस जगत् में पुण्य से ही प्राप्त होता है.

इस मुजब मुनिराज की वाणी सुन के राजकुंवर पुरुषसिंह विनय पूर्वक इस तरह बोला हे प्रभु ! निर्धन को धन का भंडार बताने को आपने यह धर्म मेरे को अच्छी तरह बताया

है मगर यह धर्म गृहवास में रहकर नहीं आचर सके क्योंकि गृहवास संसार रूपी वृक्ष का एक उत्तम दोहद है. मगर हे भगवन्त! इस संसार रूपी दुर्ग्राम के निवास से मैं तो उद्वेग पाया हूं, इसलिये मेरे को धर्मराजा की राजधानी रूप दीक्षा दो, राजपुत्र के ऐसे वचन सुन के विनयनन्दन सूरि बोले हे राजकुंवर! यह तुम्हारा मनोरथ बहुत श्रेष्ठ और पुण्य संपत्ति को साधने वाला है बड़ी बुद्धिवाला, विवेकी और दृढ निश्चय रखने वाला हे महासत्य! तुम व्रत का बोझा धारण करने योग्य हो इससे तुम्हारा मनोरथ हम पूर्ण करेंगे किन्तु पहिले तुम नगर में जाके तुम्हारे पुत्र वत्सल माता पिता की आज्ञा लेके आओ क्योंकि जगत् में प्राणी को पहिले गुरु माता पिता हैं, मुनि के ऐसे वचन सुन के पुरुषसिंह नगर में गया और माता पिता के पास जाके प्रणाम करके अंजलि जोड़ दीक्षा लेने की आज्ञा के लिये विज्ञप्ति की पुत्र का ऐसा वचन सुन कर उन्होंने कहा "हे वत्स! इस समय तेरे को दीक्षा लेनी युक्त नहीं क्योंकि पंच महाव्रत का बोझा सहन करना वो बहुत मुश्किल है संजमी पुरुष को अपने देह में भी ममता छोड़ और रात्रि भोजन से विराम पाके बेंतालीस ४२ दोष से रहित ऐसे पिंड का भोजन करना पड़ता है नित्य उद्योगी, ममता रहित, परिग्रह वर्जित, और गुणों में तत्पर ऐसे मुनि को पांच समिति

और तीन गुप्ति सर्वदा धारण करनी पड़ती है और विधिपूर्वक मासादिक प्रतिमा और द्रव्य क्षेत्रकाल और भाव के अनुसार के अनेक प्रकार के अभिग्रह करने पड़ते हैं यावज्जीवित स्नान का त्याग, पृथ्वी पर शयन, केश का लोच, शरीर का असत्कार, गुरुकुल में सदा निवास, परिसह और उपसर्गों की अनुमोदन सहित सहनता और अठारह हजार शील के अंग का अवधारण इत्यादि सर्व नियम दीक्षा लेने से पालने पड़ते हैं. हे सुकुमार कुंवर ! इस तरह के निरन्तर नियम पालने वो लोहे के चने चावने हैं. दो हाथ से अपार समुद्र को तिरना है, खड्ग की तीक्ष्ण धार पर चरण से चलना है, अग्नि की ज्वाला को पान करना है कांटे पर मेरु पर्वत तोलने का है, बड़ी नदी में सामने पूर से पूर के साथ तिरना है अकेली जान से बलवान शत्रुओं के सैन्य को जीतना है, और फिरते चक्र पर रहा हुवा राधावेध करने का है ग्रहण की हुई दीक्षा यावज्जीव तक पालनी वो ही बड़ा सत्त्व, वो ही अगाध धैर्य, वो ही बडी बुद्धि, और वो ही बड़ी ताकत है,

इस तरह माता पिता के वचन सुनके राजकुंवर प्रसन्न हो के बोला " हे पूज्यपाद ! आप कहते हो वह बराबर है दीक्षा पालना बड़ी कठिन है, मगर मैं आपको विज्ञप्ति करता हूं कि संसार में निवास करने से उत्पन्न होते कष्ट के आगे दीक्षा का

कष्ट एक सैकड़े का एक हिस्सा भी नहीं. वचन से कहने योग्य और कानसे नहीं सुनने लायक ऐसी प्रत्यक्ष नरक की वेदना तो दूर रही, मगर इस लोक में निरपराधी तिर्यंच जाति का बंधन, छेदन और तर्जनादिक की दुःसह पीड़ायें, मनुष्य के कुष्ठादिक व्याधियों की पीड़ा, कैदखाना, अंगका कतराना, त्वचा उखेड़ना, शरीर जला देना और मस्तक का छेदन करना इत्यादि कष्ट, और स्वर्गवासी देवता को प्रियजनों का वियोग, शत्रु से पराभव और च्यवन का ज्ञान से होता दुःसह दुःख देखने में आता है" राजकुंवर ने अपने मा बाप को इस तरह कहा, तब पुत्र को शाबाशी देके खुश होके उन्होंने व्रत लेने की आज्ञा दी. पीछे पिताने हर्ष से जिसका निष्क्रमण महोत्सव किया है. ऐसा राजपुत्र फल का अर्थी जैसे वनस्पति के पास जावे तैसे दीक्षा के लिये मुनि के पास आया. वहां सामायिक का उच्चारण करके पुरुष सिंह कुंवर विनयनंदनमुनि के चरण कमल के पास भवसागर तिरने में नाविका रूप दीक्षा ग्रहण की. प्रमाद रहित सर्व प्राणी की रक्षा करते उस राजकुंवर ने राज की तरह दृढपणे दीक्षा का प्रतिपालन किया उसके साथ वीस स्थान में से कितनेक स्थानक आराध के उसने उज्वल ऐसे तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया. बहुत काल पर्यन्त विहार कर के अखीर में अनशन से काल करके वैजयंत विमान में महर्द्धिक देवता हुआ.

इस जंबूद्वीप में भरतक्षेत्र में वडी संपत्तियों का स्थान रुप विनीता नामकी नगरी है. जैसे दुसरे द्वीप में से चंद्रों के बिंब लाके रचे होवे ऐसे चांदी के कांगरे से वो नगरी के आजू बाजु एक बड़ा किल्ला शोभायमान था. अनेक प्रकार के रत्न के भंडार रूप उस नगरी में राजाओं ने रक्षा के लिये एक दूसरा चांदी का किल्ला वनाया था, वो जैसे शेषनाग कुंडलाकार से होके उसकी रक्षा करता होवे ऐसे दीखने लगा. वहां रहे हुये चुनेवाले महेल के रत्न के छज्जे पर गीरते चंद्रके प्रतिबिंब को घरके बिलाव दहीं के पिंड जान के उसको चाटते थे. वहां क्रीडा के तोते घर घर 'अर्हतदेव और साधु गुरु ! ऐसे पढ़ते थे, और उसको ही सुनते थे हरेक वासगृह में जलाने में आते अगर धूप में से निकलती धूंवें की श्रेणियें आकाश में तमाल वृक्ष के वन का देखाव विस्तारती थी. पानी के रेंटमेंसे उछलते बिंदुओं से छारहे वहां के उद्यानों में जैसे शीत से भय पाते होवें ऐसे सूर्य किरन कभी घुस नहीं सकतें. उस नगरी में इक्ष्वाकु वंश में तिलकरूप मेघनामका राजा था, जो महामेघ की तरह सब जगत् को आनन्द देता था. उस राजा की राजलक्ष्मी याचकों को कृतार्थ करनके लिये सदैव दान देने में आती थी. देने पर भी पानी की नाली की तरह वह अतिशय वृद्धि पाती थी. दूसरे राजाओं पांच अंग से पृथ्वी का स्पर्श कर

मेघराजा को नमते थे और वस्त्र, अलंकार और रत्नादिक की भेट से उसका अर्चन करते थे मध्यान्ह का सूर्य जैसे देह की छाया का संकोच करे वैसे उसका प्रसरता प्रताप शत्रु की लक्ष्मी का संकोच करता था, बड़ी समृद्धि से, बड़ी शक्ति से और बड़े प्रभाव से चौसठ इन्द्र उपरांत जैसे पैंसठवा इन्द्र होवे ऐसे वो राजा दीखता था.

उस राजा को मंगलीक के स्थान रूप मंगला नामकी एक पत्नी थी वो शीलवती राणी जैसे देहधारी कुल लक्ष्मी होवे ऐसी दीखती थी वो राणी निरन्तर अपने पति के हृदय में रहती थी, और राजा उसी के हृदय में रहता था वासगृह वगैरह में तो उसको सिर्फ बहिरंग मात्र निवास था. गृह में वा उद्यान वगैरह में वो महाराणी संचार करती वहां भी अपने पति का देवता से अधिक ध्यान करती थी वो विशाल लोचन वाली कांता अपने रूप, लावण्य और सौभाग्य से देवांगना को तो दासी रूप करती थी, और अपने सुन्दर मुख से चन्द्र को भी दास किया था, उसका अधिक उज्वल रूप और लावण्य, उंगली और मुद्रा की तरह परस्पर एक दूसरे को शोभाते थे. इंद्राणी के साथ इंद्र की तरह वो देवी के साथ में भोग भोगते उस राजा को अक्षय प्रीति होगई थी.

अब पुरुषसिंह का जो जीव वैजयंत विमान में गया था

वां तेतीस सागरोपम का आयुष्य भोग के श्रावण मास की शुक्ल द्वितीया के दिन मघा नक्षत्र में चन्द्र आने पर वहां से च्यव के मंगला देवी की कुक्षि में आया उस समय मंगला देवी ने तीर्थंकर के जन्म के सूचक गजेंद्र वगैरह चौदह महा स्वप्न देखे, और पृथ्वी जैसे निधान को गूढ़ तरह धारन करे तैसे मंगला देवी ने तीन भुवन का आधार रूप गर्भ को धारण किया.

उस समय में कोई धनाढ्य व्योपारी अपनी दो बराबर उमर की स्त्रियों को साथ लेके व्योपार करने के लिये उस नगर से दूसरे देश को गया, रास्ते में उसकी एक पत्नीने पुत्र को जन्म दिया. उस पुत्र को दोनों सपत्नियों (शोकों) नें समदृष्टि से पाल के बड़ा किया. किन्तु वो व्योपारी देशांतर में से धन लेके पीछा लोटते रास्ते में ही मृत्यु को प्राप्त हुआ.

दैवकी गति महा विषम है ! शोक से अश्रु को बरसाती दीन मुख वाली दोनों स्त्रियोंने अपने पति का अग्नि संस्कार कराकर और्ध्वदेहिक क्रिया की. पीछे उसमें से एक कपटी स्त्री "यह पुत्र और धन मेरा है" ऐसा बोल के पुत्र की सच्ची माता के साथ में झगड़ा करने लगी उनमें से एक सच्ची पुत्र माता, पुत्र और धन का क्षेम, और दूसरी कपटी माता पुत्र और धनका योग (लाभ) इच्छती थी. वे दोनों स्त्रियें वहां से सत्वर अयोध्या नगरी में आई. वहां उन दोनोंने अपने कुलमें, और

दूसरे कुलमें, और न्याय के धर्मासन के पास भी फरियाद की, परन्तु उनका झगड़ा उन्हों से बिलकुल मिटा नहीं. वहां से विवाद करती हुई वे दोनों राजा के पास आई. राजाने सभा में बुला के उनको वाद का सबब पूछा. पहिले पुत्र की अपर माताने राजा को कहा—"हे महाराजा ! यह हमारा झगड़ा नगर में सब जगह कहने में आया है, मगर किसीने उसका निर्णय नहीं किया, क्योंकि पर दुःख से दूसरा कौन दुःखी होवे ! पृथ्वी में परसुख से सुखी और परदुःख से दुःखी ऐसे तो आप धर्म राजा हो, इससे सच्चा न्याय मिलेगा ऐसा विचार के मैं आप के शरण आई हूं. यह मेरा निजका पुत्र है और मैंने इसको अच्छी तरह पाला है, इससे यह सब धन भी मेरा है; क्योंकि जिसका पुत्र उसका धन ऐसा कहलाता है" पीछे पुत्र की सच्ची माता बोली—हे कृपालु राजा ! यह पुत्र और धन मेरे हैं. यह मेरी शोक्य बिना संतान की है वह द्रव्य के लोभ से मेरे साथ में क्लेश करती है. पहिले मेरे पुत्रका मेरे साथ यह भी पालन करती थी उस समय मैंने सरलता से इसको ऐसे करते नहीं रोका, इससे अब स्नेह से पैर के पास सुलाते सिरके पास सोने वाली होगई है, इसलिये हे महाराजा ! आप न्याय करने को सज हो, इस झगड़े का आपको ही निर्णय करना चाहिये, क्योंकि राजा परीक्षा करके या परीक्षा किये बिना जो

कुछ फैसला देवे वह पीछा नहीं फिरता ". इस तरह दोनों औरतों के कहे के बाद राजा बोला "यह दोनों औरतें जैसे एक जड़ में से पैदा हुई होवे ऐसी बराबर उमर की हैं दोनों औरतें जब असमान रूपवाली होवे तब जिसके साथ पुत्र की आकृति मिलती होवे उसका यह पुत्र है. ऐसा अनुमान कर सकें किंतु यह पुत्र तो दोनों के आकार से मिलता है इससे यह अनुमान भी हो नहीं सक्ता और यह बालक बोल भी नहीं जानता तो पीछे यह माता है कि यह विमाता है ऐसे ज्ञान की तो बात ही क्या करनी" इस झगड़े का निर्णय करने के शोच करते करते मध्यान्ह काल होगया और नित्य कृत्य सब रुक गया था तब पीछे सभासदों ने कहा हे प्रभु ! यह दोनों का विवाद वज्रग्रंथी की तरह-दुर्भेद्य होने से छः मास में भी हमारे से नहीं हो सका इसलिये अब आप के नित्य कृत्य का समय हुवा है तो वो भूलना न चाहिये, थोड़ी देर बाद आप फिर इस विवाद के लिये विचार करना," ठीक ऐसा करो, ऐसे कहके राजा ने सभा विसर्जन की, और उसके पीछे नित्य का कृत्य करके अन्तःपुर में गया वहां मंगला देवी ने पूछा कि हे स्वामी ! मध्यान्ह कृत्य के लिये आज इतनी देर क्यों हुई ! राजा ने उन दोनों औरतों के विवाद का वृत्तांत कह सुनाया. तब गर्भ के प्रभाव से जिसकी सुमति हुई है ऐसे

सुमंगला देवी इस तरह बोली हे देव ! स्त्रियों के विवाद का निर्णय तो स्त्रियों को ही करना युक्त है, इसलिये उन दोनों के विवाद का निर्णय मैं खुद करूंगी, पीछे राजा महाराणी को साथ लेके सभा में आये वहां उन दोनों स्त्रियों को बुला के फिर से उनके विवाद का सबब पूछा, तब उन्होंने पूर्व की तरह कह सुनाया राणी उनका बोलना और उत्तर देने की रीति तर्क विचार कर बोली भगिनीयों ! मेरे उदर में तीन ज्ञान को धारण करने वाला तीर्थंकर उत्पन्न हुवा है, उनका जन्म हुये बाद अशोक वृक्ष के नीचे बैठ के वो तुम्हारा विवाद का निर्णय करेगा, इसलिये तुम दोनों वहां तक राह देखो. अपर माता ने वो बात कबूल की, मगर पुत्र की सच्ची माता बोली हे महादेवि ! मैं थोड़ी देर भी रह नहीं सक्ती, और मेरे प्यारे पुत्र को इतने काल तक शोक्य के स्वाधीन भी कर नहीं सक्ती. आप सर्वज्ञ की माता हो तो तुम खुद आज ही इसका निर्णय करो, पुत्र की सच्ची माता के ऐसे वचन सुनके मंगला देवी निर्णय करके बोली "यह स्त्री काल क्षेपन को सहन कर नहीं सक्ती, इसलिये यह पुत्र बराबर इसी का ही है, और यह दूसरी स्त्री पराये का पुत्र और धन दोनों के आधीन रहने देने का मेरा निर्णय सुन के काल क्षेपक करने को कबूल करती है, इससे वो उसकी सच्ची माता नहीं है, क्योंकि सच्ची माता खुद का पुत्र दोनों के आधीन

रहने देने रूप कालक्षेप कैसे सहन करे? इसलिये हे भद्र! तूं बिलकुल भी काल क्षेपन सहन नहीं करती इसलिये मेरे को मालुम होता है कि यह पुत्र तेरा है. इससे उसको लेके तूं घर जा. कभी इस सौतें इस बालक का लालन पालन किया होगा, मगर उससे कुछ यह उसका नहीं होगा. क्योंकि कोकिला के पुत्र का पोषण करने वाली तो कागली (कौवी) होती है मगर वह पुत्र तो कोकिला का ही कहा जायगा" गर्भ के प्रभाव से देवीने उन्हों का इस तरह निर्णय किया, वह सुन कर सब चतुर्विध सभा ने नेत्र विकाश कर हर्ष पाया. पीछे प्रातः काल होने पर कम-लिनी और कुमुदिनी की तरह उस पुत्र से हर्ष और खेद पाती वे दोनों शोक्यें अपने घरगई.

जैसे संकोच करके रहता होवे वैसे देवी को कुछ भी दुःख नहीं देता ऐसा गर्भ शुक्ल पक्ष के चन्द्र की तरह अनुक्रम से बढने लगा पीछे नव मास और साढे सात दिन बीतने पर वैशाख मास की शुक्ल अष्टमी को चन्द्र मघा नक्षत्र में आने पर पूर्व दिशा चन्द्र को जन्म देवे ऐसे मंगला देवीने सुख से कौंच पक्षी का चिन्ह वाला सुवर्ण वर्णी पुत्र रत्न को जन्म दिया. उस समय त्रैलोक्य में उद्योत हुआ, क्षणभर नारकी जीवों को भी सुख हुआ, और इन्द्रों के आसन कंपे. प्रथम दिक्कुमारियों ने वहां आके यथा योग्य सूतिका कर्म किया. पीछे शक्र इन्द्र

आके मंगलादेवी के शय्या में से प्रभु को मेरुपर्वत पर लेगया. वहां अच्युतादि त्रेसठ इन्द्रोंने आके शक्र इंद्र के उत्संग में रहे हुवे प्रभु का तीर्थ जल से अभिषेक किया. पीछे इशान इन्द्र के गोद में प्रभु को बिठा के शक्र इन्द्रने बनाये हुवे सफेद चार वृषभ के सींग में से निकलते हुवे जलसे प्रभुको स्नान कराया पीछे विलेपन कर वस्त्रालंकार पहना के और आरात्रिक उतार के शक्रइन्द्र भक्तिसे इस मुजब स्तुति करने लगा.

हे देव ! आपके जन्म कल्याण से यह पृथ्वी कल्याण वाली होगई है, तो जब आप चरणकमल से इस पृथ्वी पर विहार करोगे तबकी तो बातही क्या करनी ! हे भगवन् ! आपके दर्शनके सुख से हमारी दृष्टियें कृतार्थ हुई हैं, और आपका पूजन करने से यह हाथ सफल हुये हैं, हे जिननाथ ! आपका स्नात्र अर्चन वगैरह का जो महोत्सव करने में आया है वो चिरकाल के मेरे मनोरथ रूपी प्रसाद पर कलश रुप हुवा है, हे जगन्नाथ ! सांप्रतकाल में मैं इस संसार की भी प्रशंसा करताहुं, क्योंकि जिस में मुक्ति के एक निबन्ध रुप तुम्हारा दर्शन प्राप्त हुवा है, हे देव ! स्वयंभूरमण "समुद्र के उर्मियें कभी गीन शके' मगर मेरे जैसे पुरुष अतिशयों का पात्र ऐसे तुम्हारे गुणों को नहीं गिन शके. धर्मरुपी मंडप के स्तंभ रुप; जगत् में उद्योत करने में सूर्यरुप और दया

रुपी वेलों को आश्रय के लिये विशाल वृक्ष रुप ऐसे हे जगत्पति! इस विश्वकी रक्षा करो. हे देव! मुक्ति के बंध द्वारको खोलने में कूंजी रुप तुम्हारी देशना पुण्यवंत प्राणीयों के ही सुनने में आती है. हे भुवनेश्वर! उज्वल दर्पण जैसे मेरे दिलमे हमेशा प्रतिबिंब रूप रही हुई तुम्हारी मूर्ति मेरे को मुक्ति सुखके कारण रूप हो.

इस मुजब स्तुति कर शक्रइन्द्र प्रभु को लेके क्षण भर में वहां से मंगला देवी के पास आये, और वहां प्रभु को रख के अपने स्थान को गये. प्रभु गर्भ में थे उस समय माता की अच्छी मति हुई थी इससे पिता ने प्रभु का सुमति ऐसा नाम रक्खा, इन्द्र की आज्ञा से आई हुई धात्रियों से लालन पालन हुवे प्रभु शिशुवय का उल्लंघन करके यौवनवय को प्राप्त हुये. उस समय प्रभु की काया तीन सो धनुप ऊंची हुई, स्कंध पुष्ट हुये, और भुज रूपी शाखा जानु तक लम्बी हुई इससे जैसे जगम कल्पवृक्ष होवे ऐसे प्रभु शोभने लगे तब उनकी लावण्य रूपी तरंगिणी में मछलियें की तरह ललनाओं की दृष्टियें चंचल होने लगी. अपने भोग्य कर्म है ऐसा जान के मात पिता के आग्रह से सुंदर राजकन्याओं के साथ प्रभु ने पाणिग्रहण किया. जैसे वैजयंत विमान में रहे होवें ऐसे बारह पूर्वांग सहित गुणतीस लाख पूर्व राज्यावस्था में प्रभु ने निर्गमन किये जो के खुद

स्वयं बुद्ध है. किंतु लोकांतिक देवताओं की प्रार्थना से श्रीमुनि नाथ प्रभु ने दीक्षा लेने की इच्छा से वार्षिक दान देना शुरू किया. वार्षिक दान के आखिर में जिसका आसन चलित हुआ है ऐसे इंद्रों ने और राजाओं ने स्वामी का दीक्षाभिषेक किया. पीछे प्रभु अभय करा नामकी शिबिका उपर आरूढ होके सुर असुर और मनुष्य के साथ सहस्राम्र वन में पधारे वहां वैशाख मास की शुक्ल नवमी के दिन मध्यान्ह समय में मघा नक्षत्र में चन्द्र आने पर हजार राजाओं के साथ नित्य भक्त (विना उपवास) ऐसे प्रभुने दीक्षाली, पीछे जैसे दीक्षा का अनुज बन्धु (छोटा भाई) होवे वा जैसे नियमित्र होवे, ऐसा मनः पर्य्यव नामका ज्ञान उसी समय प्रभु को उत्पन्न हुवा.

दूसरे दिन विजयपुर में पद्मराजा के घर प्रभुने परमान्न से पारणा किया. देवता ने उसके घर सुवर्ण वृष्टि वगैरह अद्भुत दिव्य प्रकट किये. राजाने नित्य पूजन के लिये उस स्थान पर एक रत्नों का चबुतरा बनाया. वहां से विविध अभिग्रह को धारण करते और परिषहों को सहन करते प्रभुने वीस वर्ष तक पृथ्वी पर विहार किया. ग्राम आकर वगैरह में विहार करते २ प्रभु एकदा पीछे अपने दीक्षा गृहण वाले सहस्राम्र वन में आये. वहां प्रियंगुवृक्ष के नीचे ध्यान करते प्रभु अपूर्व करण से क्षपक श्रेणी में आरूढ हुये, तब उनके सब घाति

कर्म टूटगये. चैत्रमास की शुक्ल एकादशी को चन्द्र मघा नक्षत्र में आने जिसने छठ तप किया है ऐसे प्रभु को उज्वल केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ. आसन-चलित होने से यह वृतांत जान के सब इन्द्र, सुर असुर के साथ वहां आये. और उन्होंने देशना देने के लिये समोसरण बनाया. उसमें प्रभुने पूर्व द्वार से प्रवेश करके उसके मध्य भाग में रहा हुआ एक कोस सोलह सो धनुष ऊंचा चैत्य वृक्ष की प्रदक्षिणा की. पीछे 'तीर्थायनमः' ऐसे बोल के प्रभु पूर्वाभिमुख सिंहासन पर विराजे, तब देवता ने दूसरी तीन दिशाओं में प्रभुके प्रतिबिंब स्थापित किये. सुर, असुर, और मनुष्य सहित चतुर्विध संघ भी योग्य स्थान पर बैठा पीछे इन्द्र नमस्कार करके इस तरह स्तुति करने लगा.

हे भगवान् ! यह अशोक वृक्ष भवराओं के गुंजारव से जैसे गाता होवे, चलायमान पत्रों से जैसे नाचता होवे और तुम्हारे गुणों में रक्त होने से खुशी हुवा होवे ऐसे खुश दीखता है. यह देवता जिसके बंधन नीचे है ऐसे पुष्प योजन तक तुम्हारी देशना भूमिपर जानुप्रमाण बरसाते हैं. तुमारा मालव कौशिकी प्रमुख ग्राम और राग से पवित्र ऐसा जो दिव्य ध्वनी होता है, उसको मृग भी हर्ष से ऊंची ग्रीवा करके सुनते हैं. तुम्हारे आगे रही हुई चंद्र जैसी उज्वल यह चामर श्रेणी जैसे तुम्हारे मुख कमल की सेवा करने को आई हुई हंसकी पंक्ति

होवे ऐसी शोभती है. सिंहासन पर बैठके तुम जब देशना देते हो तब मृग सिंहकी सेवा करने को जैसे आते होवे ऐसे वे देशना सुनने को आते हैं. ज्योत्स्ना से व्याप्त ऐसा चंद्रमा जैसे चकोर पक्षी को हर्ष देता हैं, ऐसे क्रांतियों से व्याप्त ऐसे तुम सर्व की द्रष्टि को परम हर्ष देते हो. हे विश्वपति ! तुम्हारे आगे आकाश में ध्वनि करता दुंदुभि, सब जगत् में आप्त पुरुषों के भीतर तुमारा बडा साम्राज्य को जैसे बताता होवे वैसे दिखता है. पुण्य समृद्धियों के क्रम जैसे और तीन भुवन उपरके तुम्हारे प्रभुत्व को बताने वाले यह तीन छत्र तुमारे उपर शोभा देरहे हैं. हे नाथ ? ऐसी तुमारी चमत्कारी प्रतिहार्य लक्ष्मी को देख के मिथ्या द्दष्टि भी आश्चर्य क्यों न पावे ! "

इस मुजब स्तुति कर शक्रइंद्र विराम पाये बाद सुमतिनाथ प्रभु ने सर्व भाषा को अनुसर ने वाली वाणी से देशना देने का प्रारम्भ किया.

इस जगत् में कार्या कार्य के ज्ञान की योग्यता को पाये हुए प्राणी को अपने कर्त्तव्य में मूढ़ रहना न चाहिये. पुत्र, मित्र और स्त्री वगैरह की और अपने शरीर की भी जो सत्क्रिया करने में आती है वो सब परकार्य है, उसमें कुछ भी स्वकार्य नहीं, प्राणी अकेला ही उत्पन्न होता है, अकेला ही मृत्यु पाता है, और भवांतर में संचित किये हुवे कर्म को अकेलाही भोगता

है, एक के चोरी से उपार्जन किया हुवा धन को सब मिल के खाजाते हैं, और वो चोरी करने वाले अकेले को ही नरक में अपने कर्म का दुःख भोगना पडता है, दुःख रूप दावानल से भयंकर और विस्तार वाले इस भव रूप अरण्य में कर्म के वश हुया प्राणी अकेला ही भटका करता है. इस जीव को बंधु वगैरह कोई भी सहायकारी नहीं होता जो शरीर सहायकारी है ऐसे कहे तो वो शरीर भी सुख दुःख के अनुभव को देनेवाला है. सुख दुःख के अनुभव को देनेवाला शरीर सहायकारी है, ऐसे जो कहे तो वो पूर्वभव में से साथ आता नहीं और आगे के भव में साथ जाने का भी नहीं, इससे अचानक मिली हुई काया को सहायकारी कैसे कहवे ? धर्म और अधर्म सहायकारी है, ऐसे जो माने तो वे भी सत्य नहीं, क्योंकि धर्म अधर्म की सहायता मोक्ष में बिलकुल नहीं, इससे इस संसार में शुभ अशुभ कर्म करता प्राणी अकेला ही भटकता है. और अपना शुभाशुभ कर्म का योग्य शुभ अशुभ फल को अनुभवता है; क्योंकि यहां के पूर्वोक्त सब संबंधियों का विरह होने से दूसरा कोई साथ रहने का सम्भव नहीं इसलिये संसार सम्बन्धी दुःख और मोक्ष संबंधी सुख को प्राणी अकेला ही भोगता है उसमें कोई सहायकारी नहीं है, जिस तरह हाथ पग खुल्ले होवे ऐसा आदमी अकेला तत्काल

समुद्र के पार को पासक्ता है मगर हृदय, हाथ, पग, वगैरह में बंधा हुवा आदमी उसका पार पा नहीं सक्ता. उस मुजब जो धन और देह वगैरह के उपर आसक्ति वाला होता है वो इस भव समुद्र को पार पासक्ता नहीं किंतु उसके उपर की आसक्ति विना अकेला प्राणी स्वस्थ होवे वो इस भव समुद्र के पार को तत्काल पाता है. इसलिये सांसारिक सब सम्बन्ध को छोड़ के प्राणी को अकेले ही शाश्वतआनन्दसुखवाले मोक्ष के लिये यत्न करना"

इस प्रकार की प्रभु की देशना सुनके प्रबोध पाये हुवे बहुत से नर और नारियों ने निःसंग होके चारित्रव्रत ग्रहण किया. उसमें से चमर वगेरह सो गणधर हुये. उन्होने प्रभु के पास से त्रिपदी को प्राप्त करके द्वादशांगी बनाई, जब प्रथम पौरुषी पूर्ण हुई तब प्रभुने देशना देनी समाप्त की. पीछे प्रभुके चरण पीठ पर बैठके चमर गणधर ने देशना देनी शुरु की. जब दूसरी पौरुषी पूर्ण हुई तब उन्होंने भी देशना समाप्त की. तब इन्द्रादि देवता अर्हत् को नमस्कार करके अपने२स्थान पर गये.

उस प्रभुके तीर्थ में श्वेत वर्ण वाला गरुड़ के वाहन वाला दो दक्षिण भुजा में वरद और शक्ति को धरने वाला, और दो वाम भुजा में गदा और पास को रखने वाला, ऐसे ही सदा समीप रहने वाला तुंबुरुनामकायक्ष शासनदेवता हुवा.

ऐसे ही सुवर्ण के जैसी कांति वाली, पद्म पर बैठने वाली, दो दक्षिण भुजा में वरद और पाश को धरने वाली, दो वाम भुजा में बिजोरे और अंकुश को रखने वाली, और निरंतर प्रभुके पास रहने वाली महाकाली नामकी यक्षणी शासनदेवी हुई. वचन के पैंतीस अतिशय से शोभते प्रभु भव्य प्राणी को बोध करते पृथ्वीपर विहार करने लगे.

बहुत काल पर्यंत पृथ्वी पर विहार करते चोंतीस अतिशय वाले सुमतिनाथ प्रभुको तीन लाख और बीस हजार साधु, पांच लाख और तीस हजार साध्वी, दो हजार और चारसो चौदह पूर्वी, ग्यारह हजार अवधि ज्ञानि, दश हजार और साढे चारसो मनः पर्यव ज्ञानी, तेरह हजार केवल ज्ञानी, अठारह हजार और चारसो वैक्रिय लब्धि वाले, दश हजार साढे चार सो वाद लब्धि वाले, दो लाख और इक्यासी हजार श्रावक और पांच लाख और सोलह हजार श्राविकायों का परिवार हुआ.

केवल ज्ञानकी उत्पति के आरंभ से सुमतिनाथ प्रभुने वीशवर्ष और बारह पूर्वांग कम एक लाख पूर्व पृथ्वी पर विहार कीया. अनुक्रम से अपना मोक्षकाल समीप जान कर समेत शिखर पर्वत पर आये. वहां एक हजार मुनियों के साथ अनशन ग्रहण कीया. एक मासके आखिर में भवोपग्राही चारअघा-

ति कर्म को खपाके, अनंत चतुष्क को प्राप्त करके, शैलेशी ध्यानमें वर्तते चैत्र मास की शुक्ल नवमी के दिन पुनर्वसु नक्षत्र में चंद्रका योग होते एक हजार मुनियों के साथ में सुमतिनाथ स्वामी मोक्ष पधारे.

दशलाख पूर्व कुमार अवस्था में, गुणतीस लाख ओर बारह पूर्वांग राज्यवस्था में ओर वारह पूर्वांग कम एकलाख पूर्व व्रत धारने में इस तरह सुमतिनाथ प्रभुने चालीश लाख पूर्वका आयुष्य पूर्ण कीया. अभिनंदन प्रभुके निर्वाण पीछे नव लाख क्रोड़ सागरोपम गये बाद सुमतिनाथ प्रभु मोक्षको पधारे पीछे सब इंद्र प्रभु के शरीर को ओर दूसरे सहस्र मुनियों के शरीर को विधि से अग्नि संस्कार कर वहां से नंदीश्वर द्वीप में जाके प्रभुके निर्वाण पर्वका महोत्सव कर अपने अपने स्थान पर गये.

इत्याचार्य श्री हेमचंद्र विरचिते त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरिते महाकाव्ये तृतीये पर्वणि श्री सुमतिनाथ स्वामी चरित्र वर्णको नाम तृतीयः सर्गः समाप्तः॥ ३ ॥

श्री संघ से प्रार्थना।

हिन्दी जैन साहित्य बढ़ाने की आवश्यकता है इस लिये जो कोई मदद करने को चाहें वे सोभागमलजी हरकावत अजमेर को लिखें वा रकम भेजें, साधु साध्वी और सामान्य स्थिति के श्रावक श्राविका से प्रार्थना है कि अभिनन्दन और सुमतिनाथ प्रभु का चरित्र डाक व्यय के लिये एक आना भेज कर सोभागमलजी के पास से मुफ्त मंगालेवें. खरीददारों के लिये सो कापी का दाम सिर्फ सात रुपया है और भी भगवान के चरित्र छप रहे हैं।

मुनि माणक्य.
लाखन कोटडी अजमेर,

कल्पसूत्र मूल और हिन्दी भाषान्तर।

सर्व सज्जन और विद्वान् गणको ज्ञात हो कि एक रुपये में ऐसा अमूल्य और सर्वमान्य ग्रंथ आजतक छपा नहीं है इस लिये कृपाकर इसको मंगाके देखें. और लाभ उठावें. और इस तरह से और भी प्राचीन जैन सूत्र ग्रंथ हिन्दी भाषान्तर के साथ छपेंगे. असाड सुदी १५ संवत १९७३ के पश्चात मूल्य १।) होगा. डाकव्यय पृथक। मिलने के पते—

श्री आत्मानन्द जैन पुस्तक प्रचारक मंडल
रोशन मोहल्ला, आगरा.

सोभागमल हरकावत
अजमेर.